चीन का चाऊमिन हमारा चाऊमिन

अर्धेंदु सेन

चीन में मुझे वह चाऊमिन कहीं नहीं मिला, जो कोलकाता में इफरात में मिलता है। इसलिए मैं समझ पाया हूं कि चीनी सामान के बहिष्कार के दौर में चाऊमिन खाना छोड़ना ठीक नहीं।

अभी-अभी चीन से लौटकर आया हूं। हमारे देश के बच्चे-बूढ़े-औरतें जब चीनी उत्पादों के बहिष्कार में व्यस्त हैं, तब चीन की यात्रा क्यों? यह सवाल मुझसे पूछे जाने पर मैं भी करन जौहर की तरह कह सकता हूं कि मैंने जब चीन का टिकट खरीदा था, तब दो देशों के रिश्ते में इतनी खटास नहीं आई थी। बिना किसी दुविधा के कह सकता हूं कि मैं अब कभी चीन नहीं जाऊंगा, अपने पैसे से तो नहीं ही। चीन की यात्रा करते हुए मेरे मन में दुविधा नहीं रही हो, यह नहीं कह सकता। लेकिन चीन से लौटकर जब मैंने देखा कि कालीपूजा में चीनी पटाखों की बिक्री में कोई कमी नहीं आई है, तब मुझे महसूस हुआ कि चीन जाकर मैंने कोई गलती नहीं की।

हमारी प्रतिबद्धताओं में थोड़ी-बहुत बेईमानी रहती ही है। राज ठाकरे को लगने लगा था कि देश के लोग देश से नए तरीके से प्रेम करने लगे हैं। एक बार कहने की देर है, वे पाक अभिनेता-अभिनेत्रियों का बिना किसी दुविधा के बहिष्कार करने लगेंगे। लेकिन नहीं। यह भारतवर्ष है। उनकी योजना पूरी तरह परवान नहीं चढ़ पाई। तब ठाकरे और उनके लोग सिनेमा हॉलों में तोड़-फोड़ के काम में उतरे। हमारे देश के विद्वान द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर थीसिस जमा करने के लिए सिर पर दही का टीका लगाकर जाते हैं। हमारे वैज्ञानिक भगवान में यकीन करते हैं, हम भी करते हैं। लेकिन हम सरस्वती पूजा के लिए इकट्ठा किए गए चंदे से सिगरेट पीते हुए संकोच नहीं करते। इसलिए बहिष्कार करते हुए भी हम बहिष्कार नहीं करते।

पर ध्यान दीजिए, समस्या सिर्फ पाकिस्तान नहीं है, उसके साथ चीन भी है। भारत ने पाक आतंकी सरगना मसूद अजहर को अंतरराष्ट्रीय आतंकवादी घोषित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में दबाव बनाया था। लेकिन चीन ने इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया। इसी कारण चीन के सामान की बहिष्कार की मांग उठी। चूंकि यह सारा माहौल दिवाली से पहले बना था, इसलिए सोचा गया, क्यों न चीनी पटाखों का बहिष्कार हो। चीन की पूरी अर्थव्यवस्था ही निर्यात निर्भर है। क्या इससे वह नहीं डरेगा?

चीन में प्रतिव्यक्ति आय हमसे दोगुनी है। उसी अनुपात में उसका खर्च भी है।

विलासिता के चिह्न वहां के शहरों में ही नहीं, गांवों में भी खूब देखने को मिले। बीजिंग का विस्तीर्ण इलाका और पूरा शंघाई शहर न्यूयॉर्क के मैनहटन की तरह दिखता है। इन दोनों जगहों पर हर घर पूरी रात रोशनी में नहाया रहता है। पेरिस समझौते पर दोनों ही देशों ने दस्तखत किए हैं, लेकिन ऊर्जा की फिजूलखर्ची किसी ने बंद नहीं की। लेकिन चीन में प्रदूषण इतना ज्यादा है कि बगैर रोशनी के शायद कुछ दिखाई ही न दे। बीजिंग और शंघाई में बीच-बीच में गरीबों के घर भी दिखते हैं। टूरिस्ट गाइड से पूछने पर पता चला कि गरीबी एक बड़ी समस्या है। उदाहरण के लिए, किसी का बेटा बीमार है, लेकिन इलाज के पैसे नहीं हैं। कोई बूढ़ा इसलिए चिंतित है कि उसके पास जमा पूंजी नहीं है। कुछ जगहों पर हमें जेबकतरों से सावधान रहने के लिए भी कहा गया। कुछ समय तक साम्यवाद के रास्ते पर चलने के बाद चीन ने दूसरी राह पकड़ ली है। यह अलग बात है कि थ्येनआनमन चौक पर माओ त्से तुंग की एक बड़ी तस्वीर अभी तक टंगी है।

शंघाई शहर की आबादी दो करोड़ चालीस लाख है। ऑफिस टाइम में यह बढ़कर करीब तीन करोड़ हो जाती है। इकतालीस रूटों पर ट्रेन चलती है, जबकि बस रूटों की संख्या एक हजार से अधिक है। परिवहन के इतने विशाल नेटवर्क को संभालना कोई आसान काम नहीं है। परिवहन के मोर्चे पर पिछड़ा भारत इस मामले में चीन से बहुत कुछ सीख सकता है। शहरों को साफ-सुथरा रखने में उनकी कोशिशों का भी कोई जवाब नहीं है। बेशक वे हमेशा सफल नहीं होते, लेकिन इसमें क्या शक कि वे मेहनत करते हैं। बीजिंग की कुछ पुरानी बस्तियों में अब भी एक कमरे में एक परिवार रहता है। वहां पांच-छह परिवारों के लिए कॉमन बाथरूम हैं। पर उन बस्तियों की छोटी-छोटी गलियों को भी साफ-सुथरा रखने में वे सफल हैं।

लेकिन चीन की यात्रा में क्या लूं, क्या न लूं, इस बारे में ठोस निर्णय करना आसान काम नहीं है। इस नाजुक समय में चीनी सामान खरीदकर भारत लौटने के अपने खतरे हैं। पर चीनी सामान का बहिष्कार करने या भारत-चीन दोस्ती की पहल करने के बारे में मैं कोई टिप्पणी नहीं कर सकता, क्योंकि वह मेरा काम नहीं है। हां, एक बात जरूर कह सकता हूं। मैंने सुना था कि चीन जाने वाले भारतीयों को वहां के चिकन चिली या चाऊमिन में वह स्वाद नहीं आता, जो भारत में आता है। चीन जाकर मुझे इसकी सच्चाई पता चली। बहुत ढूंढने पर भी मुझे चीन में हमारे यहां के चाऊमिन और चिकन चिली के दर्शन नहीं हुए। जाहिर है कि ये दोनों डिश हमारे अपने हैं, चीन के साथ सिर्फ इनका नाम जुड़ा है। इसलिए चीनी सामान के विरोध के इस समय में मेरा यह विनम्र सुझाव है कि चाऊमिन खाना नहीं छोड़ना चाहिए।

पश्चिम बंगाल के पूर्व मुख्य सचिव और फिलहाल यादवपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर

चैंड ब्रे

न्यूयॉर्क टाइम्स से जुड़े पत्रकार

लैपटॉप, फोन और डेस्क के बगैर काम

फैमिली फोटो, कहीं से घूमकर लौटते हुए खरीदे सस्ते आभूषण, जूतों की अतिरिक्त जोड़ी या चॉपस्टिक्स का इधर-उधर फैले रहना ऑफिसों में काम करने की जगहों में आम दृश्य हैं। लेकिन लंदन और न्यूयॉर्क जैसे शहरों में, जहां रियल एस्टेट क्षेत्र काफी महंगा है, वहां कर्मचारियों को इतनी जगह मुहैया कराने की कीमत भी ज्यादा होती है।

स्विस बैंकिंग दिग्गज कंपनी यूबीएस सेंट्रल लंदन स्थित अपने नए भवन के ऑफिस में जिस तरह का बदलाव कर रही है, उससे इसका पता चलता है कि कर्मचारी अब अपने काम करने की जगहों से किस तरह खुद को जोड़ते हैं। लंदन के 5, ब्रॉडगेट स्थित यूबीएस के इस ऑफिस के अनेक कर्मचारियों को अब रोज एक ही डेस्क पर टेलीफोन और डेस्कटॉप कंप्यूटर के बीच बैठते नहीं पाया जाता। इसके बजाय कंपनी ने पूरी बिल्डिंग में हल्के डेस्क तैयार किए हैं। डेस्क पर लगे टेलीफोन की जगह पर्सनल हेडसेट ने ले ली है, और कर्मचारी बिल्डिंग के किसी भी डेस्क पर या अपने घर में वर्चुअल डेस्कटॉप पर काम कर सकते हैं। उनके लिए लैपटॉप लेकर घूमना जरूरी नहीं है। कर्मचारियों के फोन एक से दूसरे डेस्क पर ट्रांस्फर होते हैं या उनके मोबाइल पर आते हैं।

यूबीएस ग्रुप कॉरपोरेट सर्विसेज के प्रबंध निदेशक एंड्रयू ओवेन कहते हैं, यह कर्मचारियों के लिए माहौल को बदलने की दिशा में उठाया गया कदम है, जिसके तहत किसी भी परियोजना पर वे अलग-अलग तरह से काम कर सकते हैं। एक जगह एक डेस्क पर बैठे रहना बंधन की तरह है। ऑफिस में डेस्क की जगह कर्मचारियों के लिए लॉकर है, जहां वे उन चीजों को रख सकते हैं, जिनका वे पूरे दिन इस्तेमाल करते हैं।

कर्मचारियों के लिए बने डेस्क का खात्मा कोई नई चीज नहीं है- टेक्नोलॉजी से जुड़ी और स्टार्ट-अप कंपनियों में यह चलन न केवल बहुत पहले शुरू हो चुका है, बल्कि यह लोकप्रिय भी है। हां, बड़ी कंपनियों में इसकी शुरुआत हाल के वर्षों में हुई है। अलबत्ता इनवेस्टमेंट बैंकिंग के क्षेत्र में यह अब भी विरल है। जैसे, सिटीग्रुप ने मैनहैटन स्थित अपने मुख्यालय में इसकी शुरुआत की है। और जहां तक यूएसबी की बात है, तो उसमें भी यह व्यवस्था अभी पूरी तरह लागू नहीं हुई है। लंदन में उसके ट्रेडिंग फ्लोर्स में अब भी पारंपरिक डेस्कों की ही व्यवस्था है, लेकिन यह स्थिति जल्दी ही बदल जाएगी। यूबीएस कॉरपोरेट सेंटर, लंदन के प्रबंध निदेशक एश्ले डेविस कहते हैं, अब हम ट्रेडिंग डेस्क में बंधे-बंधाए डेस्क से मुक्ति पाने का काम शुरू करेंगे। यूएसबी का मानना है कि अपने कर्मचारियों की गतिविधियों को बंधनों से मुक्त कर वह अपनी मौजूदा जगहों का सही इस्तेमाल कर पाएगी। कंपनी लंदन की अपनी नई बिल्डिंग में प्रति 1.2 कर्मचारी पर एक डेस्क की उपलब्धता का लक्ष्य रख रही है। यहां छह हजार से ज्यादा कर्मचारी काम करेंगे; करीब नवासी फीसदी कर्मचारी नई व्यवस्था में काम शुरू भी कर चुके हैं।

स्विस बैंकिंग दिग्गज यूएसबी ने ऑफिसों में मोबाइल डेस्क की जो शुरुआत की है, वह सिकुड़ती जगह के बीच बदलती कार्यसंस्कृति का उदाहरण है।

ऑफिस बिल्डिंग में सभी डेस्कों के भर जाने की स्थिति में कर्मचारी कॉमन एरिया में काम निपटा सकते हैं या मीटिंग कर सकते हैं। लेकिन ऐसी स्थिति अभी तक आई नहीं है, क्योंकि कोई न कोई कर्मचारी छुट्टी पर गया होता है या ऑफिस के काम से सफर में होता है।

कंपनी का कहना है कि कार्यस्थल के सेट अप में यह बदलाव खर्च कम करने के लिए नहीं किया गया है। ओवेन कहते हैं, ऐसा नहीं है कि डेस्क पर बैठने पर खर्च ज्यादा होता है और वहां से कर्मचारियों को हटा देने से खर्च घट जाता है। यह दरअसल महंगे होते रियल एस्टेट और सिकुड़ती जगह के बीच खुद को बनाए रहने का कौशल है। फिर कामकाज के तरीके बदलेंगे, लोग डेस्क पर बैठे रहने की जगह लगातार गतिशील रहेंगे, तो उनमें काम करने की ऊर्जा भी बनी रहेगी। कुछ नया होता है, तो उसके प्रति यूएसबी ने नए सेटअप के लिए पिछले दो वर्षों में अपने कर्मचारियों को मानसिक रूप से तैयार किया है। दरअसल कंपनी ने मोबाइल डेस्क की अपनी पाइलट परियोजना 2010 में स्विटजरलैंड में चलाई थी। उसी दौरान उसने लंदन में उसने अपनी नई बिल्डिंग के निर्माण का काम शुरू किया था। स्विटजरलैंड के उसके ऑफिस में पच्चीस से तीस हजार कर्मचारी मोबाइल डेस्क का इस्तेमाल कर रहे हैं। आगामी दिनों में वह भारत समेत दूसरी कई जगह अपने ऑफिस में मोबाइल डेस्क शुरू करने के बारे में सोच रही है।

© *The New York Times*

अपरिहार्य कारणों से इस बार नियमित स्तंभ 'यारी-दुश्मनी' नहीं

आज फिर नेहरू और पटेल

नेहरू और पटेल की साझेदारी क्रिकेट के मैदान में बनी किसी भी जोड़ी से असीमित रूप से महान थी। उनमें से किसी एक को ऊंचा दिखाने और दूसरे को नीचा दिखाने से हम उन दोनों की स्मृतियों का ही अपमान करेंगे।

रामचंद्र गुहा

जाने-माने इतिहासकार

मेरे गृहनगर बंगलुरू में सेकंडहैंड किताबों की देश की सबसे अच्छी दुकानें मौजूद हैं। दशकों से ये दुकानें मेरी निजी और पेशेगत जरूरतें पूरी करती आई हैं, जहां से मुझे सोने से पहले पढ़ी जाने वाली सामग्री से लेकर मेरे अनुसंधान से संबंधित दुर्लभ दस्तावेज मिलते रहे हैं।

हाल ही में मैंने ऐसी ही एक दुकान से एक पुरानी किताब हासिल की, जोकि मेरे दोनों ही मकसद को पूरी करती थी। यह किताब है 1950 में प्रकाशित ए. एस आयंगर की *ऑल थ्रू द गांधियन इरा*। एक पत्रकार के रूप में आयंगर ने चेल्म्सफोर्ड और उनके बाद के सभी वायसराय का इंटरव्यू किया था और राष्ट्रीय आंदोलन के बड़े नेताओं के साथ उनकी प्रायः घनिष्ठता थी। उनकी किताब में उनके साथी पत्रकारों के जीवनवृत्त दिए गए हैं और उसके साथ ही इसमें असहयोग आंदोलन, 1930-40 के दशकों की सांप्रदायिक राजनीति तथा दूसरे विश्व युद्ध का भारत पर प्रभाव पर केंद्रित अध्याय हैं।

ऑल थ्रू द गांधियन इरा के एक अध्याय का शीर्षक है, नेहरू और पटेल। इन दोनों को स्वतंत्रता संग्राम के दौर में काम करते हुए और फिर उन्हें प्रधानमंत्री और उप प्रधानमंत्री के रूप में काम करते हुए देख रहे आयंगर ने टिप्पणी की : 'यह देश का सौभाग्य है कि हमारे पास पंडित नेहरू और सरदार पटेल के रूप में दो ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनमें ऐसे गुण हैं जोकि एक दूसरे के लिए पूरक जैसे हैं।' इसके बाद वह लिखते हैं, 'मनुष्यत्व और यथार्थ का ऐसा युग्म कहीं और देखने को नहीं मिलता, जैसी पूर्णता जवाहरलाल और वल्लभभाई में है।'

आयंगर ने इन दो राष्ट्र निर्माताओं के काम को व्यक्त करने के लिए 1950 में एक ऐसे रूपक का इस्तेमाल किया, जो कि पहले ही भारत के सबसे लोकप्रिय खेल में प्रयुक्त हो रहा था। उन्होंने टिप्पणी की, 'ये दोनों क्लीन फाइटर हैं। और नेहरू को जहां छक्के जड़ना पसंद है, वहीं पटेल एक शानदार बल्लेबाज हैं, जोकि गेंदबाजों को थकाकर अच्छा स्कोर खड़ा कर देते हैं।' उनका अगला रूपक दुनिया के सबसे महंगे खनिज से जुड़ा है। जैसा कि उन्होंने लिखा, 'ये दोनों हीरे की तरह हैं, उनमें अंतर है तो यह कि जहां सरदार बिना तराशा हुआ हीरा हैं, वहीं नेहरु एक फिनिश्ड प्रोडक्ट हैं, जिसके फलक तराशे हुए हैं और इसलिए वह चमकदार लगते हैं।'

हाल के वर्षों में विचारकों ने व्यक्तित्व के इस अंतर को गहरी राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता में बदल दिया। नेहरूवादी परोक्ष रूप से जताते हैं कि पटेल गुप्त तरीके से सांप्रदायिक थे; पटेलवादी नेहरू पर विदेश नीति से संबंधित अनेक गलतियां करने के आरोप लगाते हैं। ये पक्षपाती यह भी दावा करते हैं कि ये दोनों वास्तव में एक दूसरे पर अविश्वास करते थे।

गोपालकृष्ण गांधी ने नेहरू-पटेल की जुगलबंदी की गलत व्याख्या को लेकर रेखांकित किया है कि इस मामले में भारत के दो बड़े राजनीतिक दलों की मिलीभगत है। पहले कांग्रेस ने पटेल का परित्याग किया, उसके बाद भारतीय जनता पार्टी ने गलत तरीके से उन्हें अपनाया। दुर्भाग्य से पटेल की जयंती ठीक उसी दिन होती है, जिस दिन इंदिरा गांधी की हत्या हुई थी। 1985 से जब तक कांग्रेस सत्ता में रही, उसने पूरे उत्साह के साथ 31 अक्तूबर को इंदिरा गांधी की पुण्यतिथि के रूप में मनाया और वह जनता को यह बताना भूल गई कि इसी दिन पटेल का जन्म भी हुआ था।

चूंकि नेहरु-गांधी परिवार ने पटेल की प्रशस्ति नहीं की, इसलिए भाजपा ने यह काम किया। यह बहुत अजीब है, क्योंकि पटेल जिंदगी भर एक कांग्रेसी थे। नेहरू और पटेल को कट्टर प्रतिद्वंद्वी की तरह प्रस्तुत करना तो और भी अजीब है। पिछले आम चुनाव के दौरान यह गलत तरीके से प्रचारित किया गया कि नेहरू दिसंबर, 1950 में पटेल की अंत्येष्टि में शामिल नहीं हुए थे।

ए.एस. आयंगर ने इन दोनों शख्सियत के रिश्ते के गहन अध्ययन के आधार पर जो लिखा है, उससे इन दोनों के बीच की कथित प्रतिद्वंद्विता की परतें उघड़ जाती हैं। उन्होंने 1947-50 के उन महत्वपूर्ण वर्षों पर अपना अध्ययन केंद्रित किया है, जब नेहरू और पटेल एक बिखरे और विभाजित देश को जोड़ने के लिए एक साथ काम कर रहे थे। उन्होंने लिखा, 'परस्पर एक दूसरे को सहयोग करने वाले, न कि विरोधाभासी, गुणों के जरिये नेहरू और पटेल न केवल देश के समक्ष आई समस्याओं को सुलझा रहे हैं, बल्कि लगातार बढ़ती जा रही चुनौतियों का भी सामना कर रहे हैं। पंडित नेहरू ने सार्वजनिक तौर पर कहा है कि एक दिन भी ऐसा नहीं बीतता, जब वह सरदार पटेल नहीं मिलते और उनके साथ नीति और प्रशासन से संबंधित मुद्दों पर उनके साथ विचार-विमर्श नहीं करते। इसी तरह से, सरदार पटेल भी प्रधानमंत्री से सलाह किए बिना कोई बड़ा निर्णय नहीं लेते। यह युग्म देश की प्रगति के लिए बहुत उपयोगी है, बेशक राजनेताओं के एक वर्ग को यह नहीं सुहा रहा है।'

ऐसा अब भी है। इसी वजह से इंदिरा गांधी और उनके वंशजों ने पटेल के योगदान को दबा दिया, जबकि नरेंद्र मोदी और भाजपा ने दो ऐसे भारतीयों के बीच पक्षपाती तरीके से विरोध पैदा कर दिया है, जिन्होंने देश के निर्माण के लिए एक साथ मिलकर काम किया था।

आयंगर ने नेहरू को दूरदृष्टा और सैद्धांतिक बताया, तो पटेल को व्यावहारिक और यथार्थवादी। नवजात भारत को दोनों तरह के व्यक्तियों की जरूरत थी, बल्कि तैंय यह है कि इसी विशेष सैद्धांतिक और यथार्थवादी तरीके से काम करने की जरूरत थी। भारत को जहां नेहरू की जरूरत महिलाओं और अल्पसंख्यकों को यह आश्वस्त करने के लिए थी कि उन्हें समान अधिकार प्राप्त है, और देश को सार्वभौमिक वयस्क मताअधिकार (कम्युनिस्ट, आरएसएस के साथ ही कुछ कांग्रेसजन भी इसका विरोध कर रहे थे) की जरूरत है। वहीं उसे पटेल की जरूरत रियासतों के एकीकरण, प्रशासनिक व्यवस्था को एकजुट और आधुनिक करने और संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में भीमराव अंबेडकर के नामांकन को कांग्रेस पार्टी का समर्थन दिलाने के लिए भी थी।

स्वभाव और व्यक्तित्व में निःसंदेह दोनों एकदम भिन्न थे। मगर उन कठिन वर्षों में महत्वपूर्ण यह था कि कौन-सी चीजें उन्हें जोड़े रखती हैं। नेहरू और पटेल, दोनों में ही अपने देश के प्रति गहरा प्रेम था, देश की एकता को लेकर प्रतिबद्धता थी और उनमें यह समझ थी कि उन पर उनके साझा गुरु महात्मा गांधी की स्मृतियों का कर्ज है, जिसके लिए उन्हें आपस में मिलकर काम करना और कठोर मेहनत करनी है। आयंगर लिखते हैं, दोनों अनथक कार्यकर्ता थे, खुद को न तो शारीरिक और न ही मानसिक आराम के लिए समय देते थे। आयंगर की तरह मैं भी क्रिकेट का फैन हूं। 1970 के दशक में मुझे तब बहुत तकलीफ हुई थी, जब कुछ मित्र गावस्कर की तारीफ कर रहे थे और विश्वनाथ को कोस रहे थे, कुछ इसका उलटा कर रहे थे। मैं उन दोनों का प्रशंसक रहा हूं। इसी तरह से बाद में मुझे यह भी गवारा नहीं हुआ है कि मैं द्रविड़ और तेंदूलकर में से किसी एक को चुनूं। नेहरू और पटेल की साझेदारी क्रिकेट के मैदान में बनी किसी भी जोड़ी से असीमित रूप से महान थी। उनमें से किसी एक को ऊंचा दिखाने और दूसरे को नीचा दिखाने से हम उन दोनों की स्मृतियों का ही अपमान करेंगे। और इससे भारत की भी अवमानना होगी।

कुपोषण के खिलाफ जंग

सही दिशा में चल रहा है काम

पीसी जोशी

प्रोफेसर, मानव विज्ञान विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

"कुपोषण दूर करने के लिए पुरानी मान्यताओं से बाहर निकलना होगा।

कुपोषण के खिलाफ देश में काम बेहतरीन दिशा में चल रहा है। दरअसल जिन प्रदेशों का काम अच्छा है, दूसरे राज्यों को उन्हें मॉडल के रूप में अपनाना चाहिए। तभी चीजें बदलेंगी। सभी को मिल-जुलकर काम करना होगा। अकेले एक इन्सान या एक संस्था कुछ नहीं कर सकती। पूरी सफलता तो आखिर तभी मिलेगी, जब हम एक-दूसरे का हाथ पकड़कर आगे बढ़ेंगे। हमें यह समझना होगा कि कुपोषण का असर केवल आदिवासी बहुल इलाकों में ही नहीं, बल्कि शहरी क्षेत्रों में भी फैल रहा है। यानी यह समस्या सिर्फ ग्रामीण क्षेत्रों या पिछड़े इलाकों में नहीं है। लेकिन अगर इच्छा और तैयार हो, तो बेहतर काम किया जा सकता है। इसके लिए लगातार मेहनत करने की आवश्यकता है। साथ ही, कामकाज की मॉनिटरिंग भी करनी होगी, जैसे कि ओडिशा और महाराष्ट्र जैसे राजयों में सामूहिक प्रयासों से कुपोषण और नाटेपन की समस्या से काफी हद तक मुक्ति मिली है। इससे साफ है कि अगर हम ठान लें, तो किसी भी समस्या से निजात पा सकते हैं। इन सफलताओं को हमें ऐसे ही गंवाना नहीं चाहिए। अन्य राज्यों को देखना चाहिए कि महाराष्ट्र और ओडिशा जैसे राज्यों में सफलता कैसे मिली। अगर हो सके, तो दूसरे राज्य कुछ परिवर्तनों के साथ इन मॉडलों को अपना सकते हैं। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि यह कड़ी कहीं टूटे नहीं। दरअसल किसी भी चीज में सुधार की अनंत संभावनाएं रहती हैं। हमें निराश नहीं होना चाहिए। अगर कहीं कोई कमी है, तो हमें उसे तुरंत सुधारना चाहिए। साथ ही अगर हम पोषण आहार में स्थानीय चीजों को शामिल कर लें, जैसा कि कुछ राज्य कर रहे हैं, तो बच्चों को पोषण आहार सरल और सुगमता से मिल पाएगा। हमारे देश में बहुत-सी सांस्कृतिक मान्यताएं हैं, जो हमारे खान-पान को प्रभावित करती हैं। एक शोध के दौरान मुझे पता चला कि कुछ राज्यों में मान्यता है कि गर्भवती महिला को लाल रंग की चीज नहीं खानी चाहिए, इससे उसके और बच्चे की सेहत पर बुरा असर पड़ता है। इस कारण महिलाएं इस दौरान बहुत सी-पौष्टिक चीजें खा नहीं पातीं। इस तरह की धारणओं को तोड़ना होगा।

लक्ष्य है बड़ा, पर जीत लेंगे

सुभद्रा चन्ना

प्रोफेसर, एंन्थ्रोपॉलाजी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

"विकास का आदिवासियों के जीवन पर विपरीत असर नहीं पड़ना चाहिए।

देश में कुपोषण एक बड़ी समस्या है, लेकिन जिस तरह से हम इसके खिलाफ लड़ रहे हैं, निश्चित ही इससे हम निजात पा लेंगे। हमारे पास बहुत-सी योजनाएं हैं और उन पर काम भी बहुत तेजी से हो रहा है। उसके अच्छे नतीजे भी आ रहे हैं। बस इस बात का ध्यान रखना है कि हम मेहनत में कमी नहीं आने दें। ऊपर से लेकर नीचे तक कामकाज का समन्वय ठीक हो। काम में निरंतरता होनी चाहिए। कहीं कड़ी टूटनी नहीं चाहिए। देखने में आ रहा है कि कई प्रदेशों में कुछ हद तक सफलता मिल भी रही है। निराश होने के जरूरत नहीं है। धीरे-धीरे ही सही, हम कुपोषण पर जीत हासिल कर लेंगे। लेकिन अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि कैसे हम पोषण आहार में स्थानीय भोजन को शामिल करें। अगर हम आहार में स्थानीय सामग्री को इसमें शामिल करें, तो इसका फायदा ज्यादा होगा, क्योंकि वह आसानी से उपलब्ध होगा और लोगों उसे पहले से ही ग्रहण कर रहे होते हैं। कई बार बाहर की चीजों पर वे भरोसा भी नहीं करते। इसके साथ ही उनके अंदर आत्मविश्वास जगाने की भी जरूरत है। हमारी योजनाएं पूरी दुनिया में सबसे अच्छी हैं। इस बात का ध्यान रखना होगा कि जो योजनाएं कागजों पर हैं, वे धरातल पर भी हू-ब-हू लागू हों। यूनिसेफ जैसी संस्थाएं इसमें लगातार काम कर रही हैं। हम सफलता की ओर तेजी से बढ़ेंगे, अगर हम जंगल, पहाड़ और दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वालों के जीवन को और नजदीक से जानेंगे और इसमें उनका सहयोग लेंगे। देश का विकास भी हो और आदिवासियों के जीवन पर इसका प्रतिकूल असर भी न पड़े। टेक्नोलॉजी का प्रयोग हो, विकास के लिए यह जरूरी है। साथ ही, इकोलॉजी का भी हमें पूरा ध्यान रखना चाहिए। वे उसी तरह से रहें, जैसे से पहले से रहते आ रहे हैं। कुपोषण के खिलाफ जंग में उनकी भी हिस्सेदारी हो। समन्वय बनाकर चलेंगे, तो सफलता जल्दी मिलेगी। देश के कई राज्य लगातार प्रयोग कर रहे हैं। कई राज्यों में सफलता मिल भी रही है। ये सफलताएं कैसे मिलीं, इन पर अध्ययन करने की जरूरत है। जो राज्य इसमें सफल हुए हैं, उनके कामकाज के तरीके और अनुभव का लाभ दूसरे राज्यों को लेना चाहिए।

AMAR UJALA unicef

विशेष अभियान - 3